सायबरमोहल्ला डायरियाँ

पागलपन

(हैम्बर्ग, जर्मनी के क़िस्सागोई प्रदर्शन से)

अगर ये दुनिया पागल होती तो कैसा होता? किसी को कोई फ़िक्र न होती, और न कोई डर होता। हाँ, मगर इतना होने के बावजूद ये पेट और न होता तो मानो सोने पर सुहागा। क्योंकि ज़ालिम ये पेट इंसान और जानवर से क्या-क्या नहीं करवाता। पर इस ज़रूरत के बाद कुछ और ज़रूरतें भी होती हैं जैसे नाम, शोहरत। आज किसे नाम की ज़रूरत नहीं है, आज कौन पैसा नहीं चाहता? जिसे मिला वो ख़ुश जिसे नहीं मिला वो दुःखी।

कोई आदमी हमारे दायरे में से अलग कैसे हुआ? वो ख़ुद हुआ है या उसे अलग कर दिया गया है? जब वो हमारे बीच ठीक-ठाक था, तब हम उसकी तारीफ़ें करते थे और बड़ाई करते थे। और आज ज़रा वो अलग या कुछ हट कर बोलता या हरकतें करता है तो हम उसका साथ छोड़ देते हैं, उसकी बीती बातों का मज़ाक बनाते हैं। हम उसके साथ गांधी जी के बन्दरों जैसा बर्ताव क्यों करते हैं? जो न देख सकते हैं, न सुन सकते और न ही बोल सकते हैं। बस जो हो रहा है होने दो, हमें तो हँसने का मौक़ा मिले। ताक में रहते हैं हम, कि कब कोई ऐसा नमूना मिले, जिसे देखकर हमें थोड़ा मिर्च-मसाला मिल जाए। और हम उसे चटपटा बनायें। किसी की सोच का यूँ पकवान बनाना कहाँ की अक़्लमंदी है? वैसे तो सोच हमारी भी मुकम्मल नहीं जो कि हम उनकी सोच पर हँसते हैं, फिर हमदर्दी जताते हैं। हमारे दिमाग़ में हर वक़्त कुछ न कुछ चलता रहता है मगर वो आदमी जो अपनी अंदर की सोच के इशारों को बाहर दिखाता है, शायद उसे 'पागल' नाम दिया जाता है। वैसे तो पागलों के बारे में एक डॉक्टर के अलावा और कौन बता सकता है। और मैं डॉक्टर नहीं। उन लाखों-करोड़ों में से कुछ ही बन्दों के बारे में आपको बता सकता हूँ, जिन्हें मैं जानता और पहचानता हूँ।

कुछ साल पहले मेरे साथ ट्यूशन में एक सतपाल नाम का लड़का पढ़ता था। वो पढ़ने में बहुत तेज़ था। दसवीं कक्षा की परीक्षा में हम दोनों ने ख़ूब मेहनत की मगर नतीजा, फ़ेल। हमने दोबारा मेहनत की। मैथ्स की किताबों में एक-एक सवाल को सीखा, ज्यॉमेट्री में भी कोई कमी न छोड़ी। बड़ी मुश्किल से कम्पार्टमेंट आई, वो भी मैथ्स में। क्या करते, हमारी क़िस्मत पर पत्थर जो पड़े थे। फिर मैंने सोचा बेटा ऐसा ही रहा तो तेरा बैंड बज जाएगा। अब पेपरों के दिनों में पढ़ता कम और दिमाग़ को रेस्ट देने लगा।

ख़ैर! पेपर वाले दिन स्कूल में मैं और सतपाल मिले, हाथ मिलाकर अपने-अपने डेस्कों पर बैठ गए। नतीजा निकला और मैं पास। नम्बर बहुत कम थे मगर पास होने की ख़ुशी बहुत सारी थी। कई दिनों के बाद आज सतपाल मिला। एक सड़क के किनारे पर खड़ा हिसाब जोड़ रहा था, वो अपनी उंगलियों को भी गिन रहा था। मैं वहाँ से कहीं जा रहा था। मेरी नज़र सतपाल पर पड़ी, "अबे तू यहाँ क्या कर रहा है सतपाल?"

वो बोला, "यार आज मेरा पेपर है। राकेश तू भी तो चल। टाइम होने वाला है।"

"अबे कौन सा पेपर भाई?"

सतपाल ने कहा, "मैथेमैटिक्स का!"

मैंने कहा, "अबे क्या बक रहा है, यार तेरे होश तो ठिकाने पर हैं? पेपर ख़त्म हुए तो काफ़ी टाइम हो गया और ये तो नवम्बर का महीना चल रहा है। तू कहीं पागल तो नहीं हो गया?"

सतपाल ने कहा, "नहीं राकेश, मैं पागल नहीं हूँ। देख मैं तो जा रहा हूँ। तुझे चलना है तो चल। देख मैंने तो अपना आई कार्ड भी ले लिया है।"

मैंने कहा, "तेरी बातें मेरी समझ में नहीं आ रही हैं।"

मैंने यह कहा ही था कि इतने में सतपाल की मम्मी आ गईं और मुझे एक तरफ़ बुला कर कहा, "देखो बेटा, इसे फ़ेल होने का सदमा पहुँचा है। इसीलिए ये ऐसी बहकी बातें कर रहा है। ये तीन-चार बार फ़ेल हुआ है। तब से ऐसा ही है। कुछ न कुछ हिसाब में लगा रहता है और ख़ामख़ाँ किताब खोलकर पढ़ने लगता है। हमें बताता रहता है कि मैं 80 प्रतिशत नम्बर लाकर रहूँगा। डॉक्टरों ने कहा है कि इसका इलाज घर से अच्छा और कहीं नहीं हो सकता। बस, सब इसकी हाँ में हाँ मिलाया करो।"

मैं सतपाल की माँ की बात सुनकर परेशान हो गया। जो लड़का पढ़ने में तेज़ और चालाक था वो कैसे पागल हो गया। मगर सोचने की बात ये है कि वो मुझे अब तक पहचानता है और बीती बातें भी दोहराता है। तो भला ऐसे लड़के को हम क्या कहेंगे?

ऐसा ही एक आदमी और है जो दक्षिणपुरी में अकसर दिखाई देता था। उसका असली नाम तो मुझे पता नहीं, लेकिन सब उसे अमिताभ कहते थे क्योंकि वो हमेशा ऐक्टिंग करता रहता था। ख़ासकर अमिताभ की। जब वो ऐक्टिंग करता, तो हम खुश होते थे और हमारा मनोरंजन भी हो जाता था। और मज़ा तो तब आता जब वो ऐक्टर से डायरेक्टर बन जाता। फिर "ऐक्शन, लाइट, कैमरा" बोलता और ऐसा लगता जैसे शूटिंग का माहौल बन गया। मैं आज भी जब उस के बारे में सोचता हूँ तो उसकी ऐक्टिंग से इम्प्रेस हो जाता हूँ। हम उस ऐक्टर और उसकी बातों पर हँसते, खुश होते और उसे पाँच-दस रुपये दे देते थे। वो इतने में ही खुश हो जाता था। मुझे तो उस में कहीं से कोई कमी नहीं दिखाई देती थी। वो आज भी कहीं न कहीं होगा और लोगों को तमाशा दिखा कर खुश करता होगा। क्या तमाशा दिखाना पागलपन है?

जापानी गुड़िया

(सायबरमोहल्ला *रेडियो इमली* की प्रस्तुति से)

जब वो बोलती हैं तो दाँतों को देखकर लगता है हवा महल है। पर वो बोलतीं बहुत कम हैं। बस अपनी यादों को संजोकर रखती हैं। उनकी हर याद में कोई न कोई कहानी छिपी है। आज जब वो कमरे में दाख़िल हुईं तो उन्होंने अपनी कहानियाँ किसी को न सुनाने की अपनी आदत ख़त्म कर दी। उन्होंने हमें एक ऐसी कहानी सुनाई जो लगभग 45 से 50 साल पुरानी है, जब वो जवान थीं।

"ये देखो, ये गुड़िया! ये मेरी बड़ी अज़ीज़ है, अपनी जान से भी ज़्यादा प्यारी। हमेशा मेरे साथ ही रहती है। मैं इसे खुद से कभी अलग नहीं करती। कभी कभार तो जब किसी शादी में जाती हूँ तो इसे अपने साथ लेकर जाती हूँ। मेरे पोते-पोती कभी-कभी इससे खेलते हैं। पर बड़े प्यार से, अपने किसी साथी की तरह।"

(हमने देखी, एक नई गुड़िया। गोरी सी, मुस्कुराता चेहरा, चमकते कपड़े, पैरों में काले जूते।)

"ये मेरी सहेली है, मेरी जीवन साथी। मेरे पति इसे अपनी साली मानते हैं।" (और यूँ कहानी सुनाते-सुनाते अम्माँ अपनी यादों में चली गईं। कभी बतातीं, कभी चुप हो जातीं। चश्मे के पीछे उनकी आँखों में कुछ मोती से छलक रहे थे।) अपनी उंगली से चश्मे को पीछे धकेलते हुए, वो अब बोलीं। "बेटा बात लगभग तब की है जब मेरी उम्र शायद गुड़ियों से खेलने की थी। तब मैं एक कोठी में काम करने जाती थी। वो लोग अंग्रेज़ थे।

उनकी दो लड़कियाँ थीं, बिलकुल गुड़ियों जैसी। एक दिन बड़ी वाली लड़की का जन्मदिन था। उसके पापा उसके लिए एक गुड़िया लाए। वो शायद बाहर की थी, क्योंकि वो अपना सारा ही सामान बाहर देश से लाते थे। उनका बाहर जाना लगा रहता था। जन्म दिन पर बहुत लोग आए। बहुत बड़ी पार्टी थी। मेहमानों में कुछ अंग्रेज़ भी थे। जब उसके पापा गुड़िया लेकर आए तो सबकी नज़रें गुड़िया पर ही थीं। मेरा दिल तो कब का उस गुड़िया पर आ चुका था। पर वो मेरी कहाँ हो सकती थी। चलो, जन्मदिन की पार्टी हो ली, सभी अपने-अपने घर लौट गए। और लड़की भी अपने कमरे में सोने चली गई। मगर शायद उस लड़की को वो गुड़िया पसंद नहीं आई थी। वो उसे वहीं छोड़ गई। शायद उसे कुछ और चाहिए था, और उसे वो मिला नहीं इसलिए वो थोड़ा नाराज़ भी थी। बहुत रात हो चुकी थी, मैं अपने घर लौट आई। रातभर मुझे उस गुड़िया का ख़याल आया, वो मेरे सपनों में भी आई। शायद वो मुझे कह रही थी, "आओ, मेरे साथ खेलो।"

"मगर मैं क्या करती, मैं तो उसे छू भी नहीं सकती थी। अगले दिन मैं उनके घर गई तो मैम ने कुछ इशारों में और कुछ हिन्दी में कहा — "सुनो, बेबी का कमरा साफ़ करा दो।" मैं बेबी के कमरे में गई और सबसे पहले मैंने अलमारी को साफ़ करने का सोचा क्योंकि वहाँ दोनों बहनों के सारे खिलौने रखे होते थे। मैंने सोचा 'शायद वो गुड़िया भी उसी अलमारी में हो।' बस फिर क्या था। मैंने अलमारी को साफ़ करने के लिए खोला, वो गुड़िया एकदम सामने ही रखी थी। मैंने उसे उठाया और अपने हाथों में लेकर बाँहों में लिटा लिया। मैं कुछ देर उसे देखती रही और हल्के-हल्के उसे साफ़ करने लगी। ऐसा कई दिनों तक चलता रहा। मैं रोज़ छिप-छिप कर गुड़िया से खेलती और उससे बातें करती। उसे अपनी सारे दिन की बातें बताती और उसके चेहरे को देखती रहती। क्यों? क्योंकि चाहे मैं उसे अपनी ख़ुशी की बात बताती या फिर दुःख की, उसका चेहरा हर वक़्त खिला हुआ ही रहता। उसे भी तो दर्द होता होगा, पर वो फिर भी मुस्कुराती रहती। ये देखकर मुझे लगता कि जब तक वो मेरे साथ है, मेरे कोई दुःख नहीं हैं। एक दिन जब मैं सुबह वहाँ पहुँची तो वो लड़की रो रही थी और उसकी माँ उसे चुप कराने की कोशिश कर रहीं थीं। वहीं कोने में वो गुड़िया रखी थी। उसके बाल बिगड़े हुए थे, टाँगें भी मुड़ी हुई थीं। मैं बहुत देर तक उसे देखती रही। मैं उसे उठा भी नहीं सकती थी। पर मुझसे देखा नहीं गया, और मैंने उसे उठा ही लिया और उसे प्यार करने लगी। शायद मेरे अंदर गुड़िया के लिए प्यार उस अंग्रेज़ औरत ने देख लिया, इसलिए ये गुड़िया मुझे दे दी। और तब से वो गुड़िया मेरे साथ, मेरे पास ही रहती है।"

'बस'

अशोकी **01 : सीवर लाइन**

लख्मी चन्द कोहली

ये कहानी है एक ऐसे इंसान की जो हमेशा ही शराब पीकर अपना काम करता था। वो काफ़ी पढ़ा-लिखा होने के बावजूद भी सीवर में घुस, सीवर की सफ़ाई करता था। हमारे यहाँ की सीवर लाइन हमेशा ही हमारी एक परेशानी बनी है, कभी भी बंद हो जाती है और हमेशा ही भरी रहती है। और सीवर के ढक्कन भी नहीं हैं, जिसकी वजह से पूरी गली में बदबू रहती है। हमारे यहाँ सीवर के ढक्कन इसलिए नहीं हैं क्योंकि हमारे यहाँ के जो शराबी हैं, वे हम पर कुछ ज़्यादा ही मेहरबान हैं। छोटे ढक्कन तो क्या, बड़े ढक्कन भी नहीं छोड़ते। सीवर बंद होने की वजह से हमारे यहाँ का पानी भी गंदा आता है। इतना गंदा कि हम उसे पीने में तो क्या, किसी भी काम में इस्तेमाल नहीं कर सकते। सीवर बंद होने का भी एक कारण है। वो ये है कि हमारी गली की नालियाँ लोगों ने बंद कर रखी हैं। सारा कूड़ा हमारी सीवर लाइन में जाता है, जिसकी वजह से सीवर लाइन बंद हो जाती है। एक बार की बात है। हमारी सीवर लाइन बिलकुल बंद हो गई थी। जिसके कारण हमारे यहाँ का पानी भी इतना गंदा आ रहा था कि पानी को पीना तो दूर, उसकी महक भी सूँघना नामुमकिन था। सीवर बंद होने पर सभी गली-वालों ने मिलकर एक शिकायत लिखी और सीवर साफ़ करने वालों को दी। वहाँ जब हम

लोग गए तो हम ने देखा कि वहाँ पर एक ही आदमी था जो हमारी शिकायत दर्ज कर रहा था। वो दिखने में बिलकुल पतला था। ऐसा लगा वो आदमी अच्छा पढ़ा-लिखा था, क्योंकि वो इंगलिश साफ़ लिख रहा था। हम अपनी शिकायत वहाँ पर दर्ज करवा कर घर लौट आए।

फिर दूसरे दिन वो अपना सारा सामान लेकर हमारे सीवर को साफ़ करने आए। उनका सामान था — तीन लम्बी, पतली लकड़ियाँ (कम से कम नौ फुट की), और दो सरिये (आगे से थोड़े मुड़े हुए)। वो पाँच आदमी थे। उनमें वो आदमी भी था जिसने हमारी शिकायत लिखी थी। आज वो दिखने में बहुत ही गंदा लग रहा था। उसने गंदे, बदबूदार कपड़े पहने थे। और आज उसने कुछ ज़्यादा ही लगा रखी थी। उसे इस हालत में देखकर मैं हैरान हो गया। मैंने सोचा, इतना पढ़ा-लिखा आदमी आज इतना गंदा बनकर क्यों आया है? मैं उसे हैरानी-भरी आँखों से देखता रहा और यही सोचता रहा। उसके साथ आए चार आदमी सीवर खोल-खोल कर देख रहे थे। और वो चुप होकर एक जगह खड़ा हुआ था। वो चारों आदमी एक दूसरे से कह रहे थे, "ये सारे सीवर भरे हुए हैं"। फिर उन्होंने हमारी गली के सबसे आख़री वाले सीवर को खोला और अशोकी से कहा (अशोकी उसी आदमी का नाम है):

अशोकी, तुम सीवर में घुसो और देखो कि कहाँ पर कूड़ा अटका हुआ है।

अशोकी ने कहा >> अच्छा जी, मैं अभी देखता हूँ।

उसको सीवर में घुसते देख मुझे बड़ी हैरानी हुई। मैं अपने मन ही मन सोचता रहा कि ये आदमी कोई साहब नहीं, बल्कि सीवर साफ़ करने वाला एक छोटा-सा कर्मचारी है। उसके साथ वो चार आदमी उससे शायद कम पढ़े-लिखे थे। क्योंकि अशोकी ही वहाँ पर आई सारी शिकायतों को दर्ज करता था। अशोकी ने सीवर में घुस कर सीवर को अच्छी तरह साफ़ किया। उसमें से कुछ कपड़े और कुछ और कूड़ा निकला। अब हमारे सीवर बिलकुल साफ़ हो गये थे। सीवर साफ़ होने के बाद सभी गली-वालों ने मिलकर ढाई सौ रुपए इकट्ठा किए और सीवर साफ़ करने वालों को दिए। फिर वो अपने ऑफ़िस लौट गए। उनके जाने के बाद मैंने सोचा कि उस आदमी से बात करनी चाहिए और मैं उससे बात करने दूसरे दिन उसके ऑफ़िस पहुँचा। आज वो साफ़ कपड़ों में था। मगर आज भी उसने कुछ ज़्यादा ही लगा रखी थी। मैंने जब उससे बात करनी चाही तो उसने कहा —

(हाथ जोड़कर) ओ भाई, तू कौन है? और मेरे पीछे क्यों पड़ा है? मेरा पीछा छोड़ यार। मुझे नहीं देने तेरे सवालों के जवाब।

इतना कहकर उसने मुझे एक भिखारी समझकर बाहर जाने को कहा, और मैं चुपचाप बाहर आ गया। मैं उस से क्या बात करता? उसने आज कुछ ज़्यादा ही लगा रखी थी। जैसे ही मैं बाहर आने लगा तो वहीं पर खड़ा एक आदमी मुझे देख रहा था। उसने मुझे रोका और कहा -

आदमी >> ओ बेटा, इधर आ! (तो मैं उसके पास गया और मैंने नमस्ते किया।)

उन्होंने पूछा >> बेटा, तुम कौन हो? और इससे क्या बात करना चाहते हो?

मैंने कहा >> सर, कुछ नहीं, मैं बस यही जानना चाहता हूँ कि ये आदमी ऐसा क्यों है?

तो वो बोले >> बेटा, मैं तुझे बताता हूँ ये ऐसा क्यों है।

मैंने पूछा >> सर, आपका नाम?

(वो आदमी देखने में मोटा और साँवला था। उसने मुझसे कुछ नहीं पूछा। ये भी नहीं कि तुम कहाँ से आए हो और इसके बारे में क्यों जानना चाहते हो।)

उन्होंने बताया >> मेरा नाम हरि सिंह है।

मैंने पूछा >> सर, ये आदमी इतनी शराब क्यों पीता है?

तो उन्होंने कहा >> भाई, मैं क्या बताऊँ? इससे मैंने कितनी बार कहा है कि इतनी शराब मत पीया कर। लेकिन ये मानता ही नहीं है। उल्टा मुझे ही दो गाली देकर भगा देता है।

मैंने पूछा >> सर, इसके घर में इसे कोई मना नहीं करता?

उन्होंने कहा >> बेटा, इसके घर में कोई नहीं है। इसके घर वाले सारे गाँव में रहते हैं। इसलिए ये यहाँ रोज़ पीकर रहता है। इसके इतना ज़्यादा पीने के चक्कर में एक दिन इसकी नौकरी जाएगी।

"सर मैं आपके बारे में कुछ पूछ सकता हूँ?"

उन्होंने कहा >> हाँ-हाँ, पूछो। लेकिन क्या पूछोगे?

मैंने कहा >> कुछ ज़्यादा नहीं सर। बस कुछ आपके काम के बारे में।

उसने कहा >> ठीक है, पूछो।

मैंने पूछा >> सर, आपको यहाँ काम करते-करते कितना टाइम हो गया?

उन्होंने कहा >> मुझे लगभग दस-बारह साल हो गए हैं।

मैंने पूछा >> सर, आपको यहाँ काम करना कैसा लगता है?

उन्होंने कहा >> बेटा, काम में कोई बुराई नहीं होती। एक मज़दूर को अपना काम करना अच्छा लगता है। (फिर मैंने उन्हें धन्यवाद किया और कुछ उसके बारे में पूछने की कोशिश की।)

मैंने कहा >> सर, आपके अफ़सर इसको कुछ नहीं कहते?

उन्होंने कहा >> क्या कहेंगे? ये कुछ समझे तो। हाँ, कभी-कभी कुछ कहते तो हैं। मगर इस पर असर नहीं पड़ता। कितनी बार तो इसे नौकरी से निकालने की धमकी भी दी है, मगर इसे उनकी बातों से कुछ लेना-देना ही नहीं है।

मैंने पूछा >> सर, इससे कभी बात नहीं हो सकती?

उन्होंने कहा >> नहीं। इससे तो बात करना बेकार है। ख़ामख़ाँ ये दो-चार गाली तुम्हें सुना देगा। वो तुम्हारे लिए अच्छा नहीं है।

मैंने कहा >> ठीक है सर, कोई बात नहीं। इससे तो नहीं, आपसे बात करके अच्छा लगा। धन्यवाद। फिर उसने जाते-जाते पूछा सुनो बेटा, एक बात बताओ। तुम कहाँ से आए हो? और इतना कुछ क्यों पूछ रहे हो?

तो मैंने कहा >> सर, मैं अंकुर संस्था से आया हूँ और कुछ लोगों से बातें करना चाहता हूँ। उनके बारे में और उनके काम के बारे में कुछ जानना चाहता हूँ। इतना कह कर मैं वहाँ से चल दिया, और यही सोचता रहा कि जिससे बात करनी थी, उससे तो बात हो न सकी। मगर कोई बात नहीं, फिर भी कुछ हद तक तो काम हुआ।

अशोकी 02

अभी मैं आ कर बैठा ही था कि मेरे कानों में आवाज़ आई, "अशोकी चल, ब्लॉक चलना है।" मैंने वापस आकर कपड़े नहीं बदले थे, तो मैं एकदम निकल सका। बस, सारा सामान दोबारा से साइकिल पर रखा और पैदल चल दिया। मेरा नशा अब शायद उतर रहा था। मुझे लगा कि मुझमें से शायद बदबू आ रही थी, क्योंकि मेरे साथ चलने वाले ने अपनी नाक पर रुमाल रखा हुआ था। उसकी आँखें मेरी तरफ़ आतीं, फिर घूम जातीं। धूप नहीं थी, पर मुझे गर्मी लग रही थी। शायद ये थकावट की गर्मी थी।

हम एक गली में पहुँचे। काफ़ी भीड़ थी। क्या सब छुट्टी पर थे? लग रहा था कि कुछ हो गया हो। वहाँ पहुँचकर मेरे साथी भीड़ को हटवाने लगे, सभी लोग उनसे कुछ-कुछ कहने लगे। मेरे पैरों में दर्द हो रहा था। मैं एक घर के आगे बनी एक छोटी सी सीढ़ी पर बैठ गया। मेरा शरीर तो सूखा था पर पैंट गीली थी। मैं बैठा तो मुझ पर कई सारी मक्खियाँ आकर बैठ गईं। आसपास लोग मुझे देखकर कुछ सोच में थे। तभी एक औरत आई और मुझसे बोली, "भइया, आप ज़रा वहाँ खड़े हो जाएँगे, मुझे यहाँ सफ़ाई करनी है।" मैंने आधा सेकेण्ड सोचा, फिर उठ गया। मैं अपने साथियों का आवाज़ देकर मुझे बुलाने का इंतज़ार कर रहा था। आसपास सब लोग मुझे देखकर एक-दूसरे को मेरी तरफ़ इशारे कर रहे थे।

पूरी गली गीली थी। रात को बारिश पड़ी थी तो सीवर पूरे भर गए थे। एक शख़्स मेरे पास आया और बोला, "ओ भाई चल।" वो मुझे बार-बार ऊपर से नीचे देख रहा था।

मैं सीवर के पास गया तो देखा सीवर में कपड़े ही कपड़े भरे हुए थे। जब मैं सीवर में घुसा तो काफ़ी बदबू आ रही थी। शायद ये नशा उतर जाने की वजह से था। गली में किसी ने तेज़ आवाज़ में गाना चला रखा था। मुझे ये अच्छा लग रहा था। बार-बार, मैं सीवर से कपड़े निकालकर बाहर रख रहा था। जब भी बाहर रखता, तब लोग ऐसे पीछे हटते जैसे पता नहीं कपड़े नहीं, कुछ और ही हो। लोगों की बातें ख़त्म ही नहीं हो रही थीं, सब कुछ न कुछ बोलते जा रहे थे। कोई किसी को कोसता तो कोई मुझसे कुछ कहता।

सीवर के अंदर नाली में कुछ बड़ा सा फंसा हुआ था, पत्थर जैसा कुछ। उसकी वजह से पानी आगे नहीं बढ़ पा रहा था। मैंने काफ़ी कोशिश की, पर उसे हिला न सका। मेरे साथी मुझसे पूछ रहे थे कि क्या हुआ, पर मैं जवाब नहीं दे पा रहा था क्योंकि मेरा ध्यान उस अड़चन पर था।

हल्की बारिश शुरू हो गई। लोगों ने बिखरना, छिपना शुरू कर दिया। मेरे साथी भी ऐसा ही कुछ करने की फ़िराक़ में थे। यकायक बारिश तेज़ हो गई। बारिश की तेज़ी से पड़ती बूँदों से सीवर का गंदगी उछलकर मेरे मुँह तक आती। अब तक सभी देखने वाले छुप गए थे। मगर पत्थर अपनी जगह से नहीं हिला था। पाँच मिनट में गली में पानी भरना शुरू हो गया। सभी हल्ला मचाने लगे कि पानी घरों में आ जाएगा। वो बार-बार मेरी तरफ़ देखते। मैं सीवर से बाहर निकला और एक सरिया लाया, उससे नाली के पत्थर को मारने लगा। सभी इधर-उधर छिपकर खड़े थे। मैं अकेला ही बाहर था। मैंने सरिये के वार और तेज़ कर दिए। पानी जाना शुरू हो गया। शायद वो पत्थर टूट गया था। लोग खूब ज़ोरों से चिल्लाए, जैसे कि लॉटरी लग गई हो।

सीवर से बाहर निकलकर मैंने ढक्कन लगाया। थोड़ी देर वहीं खड़ा रहा, बारिश में। फिर कोने के मकान के बाहर हाथ-पैर धोए और वहीं अपने साथियों से अलग खड़ा रहा। कुछ ही देर में बारिश बंद हो गई। लोग मुझे देखकर मुस्कुरा रहे थे। मैं भी अंदर ही अंदर खुश था अपने काम से। मेरी थकान बढ़ने की जगह कम हो गई थी, मैं साइकिल पर चढ़कर ऑफ़िस की तरफ़ चल दिया। और वहीं कपड़े बदलकर अंदर जाकर लेट गया, कुछ आराम करने के लिए।

ब्यूटी पार्लर

यशोदा

एक ढाँचा जिसे मैंने कई महीनों से बदलते हुए देखा है। मेरी छोटी बहन लक्ष्मी जो बिल्कुल तीखी मिर्ची की तरह है। और गुस्सा तो उसे ऐसे आता है जैसे दूध में उबाल। पल में तोला, पल में माशा वाली कहानी रहती है उसकी। आज से तक़रीबन 11 महीने पहले एक दुबली पतली लड़की जिसे घर के कामकाज में अपने हुलिये को भी सँवारने का वक़्त नहीं मिलता था। वो दिनभर किसी न किसी काम में लगी रहती पर टीवी ज़रूर चलाए रखती क्योंकि उसे डांस और गानों का शौक़ है। वो काम करते-करते म्यूज़िक पर थिरकती भी रहती। और जब शाम को मैं घर पहुँचती तो फ़ौरन मुझे पानी देती। स्टोव जलाकर चाय का पानी चढ़ाती। इतने में पानी खौलता, तब तक हम दोनों इधर-उधर की बातें करते रहते। वो मुझसे ही खुलकर बातें करती। बाक़ी तो पूरा दिन वो अपने होंठों पर चुप्पी लगाए ही गुज़ार देती। अगर घर में कोई मेहमान आ जाता तो एक बौखलाहट से अन्दर किचन में आ जाती और उस बौखलाहट में वो कुछ ना कुछ ग़लत कर देती। कभी चाय में चीनी तेज़ कर देती या कभी चीनी डालना ही भूल जाती। उसको इस हालत में देखकर मैं कहती, "तुझे क्या हो जाता है लक्ष्मी! किसी के घर आने से तू काँपने क्यों लगती है?" वो होठों को चबाते हुए कहती, "पता नहीं नन्नी, मुझे इतने लोगों को देखकर घबराहट सी होने लगती है।" मुझे उसकी इस बात पर हँसी आ जाती। मैं उससे कहती, "अगर तू सड़क पर चलेगी तो क्या करेगी?" वो जवाब में सिर्फ़ मुस्कुराकर रह जाती।

ऐसे ही धीरे-धीरे समय गुज़रने लगा और उसकी चुप्पी मज़बूती में बदलने लगी। उसने अपने आपको, अपने सीले हुए घर की चारदीवारी में ही समेटकर रख लिया था। वो अन्दर रहने की वजह से दुबली और काली होती जा रही थी। मुझसे उसकी ये हालत देखी नहीं जाती थी। आख़िर उसकी बड़ी बहन जो थी!

मैंने उसे कोई कोर्स करने के लिए उकसाया। पहले तो वो नहीं मानी पर बाद में राज़ी हो गई। इससे हम सबको यानी, मुझे, माँ, चाचा और राहुल को बहुत ख़ुशी हुई। पर आज मैं बहुत दुःखी हूँ क्योंकि जब मैं शाम को घर लौटती हूँ तो मुझे ऐसा लगता है जैसे ये बन्द दरवाज़ा मेरी खिल्ली उड़ा रहा है। घर में चारों तरफ़ शांति ही शांति रहती है। कोई एक गिलास पानी पिलाने वाला भी नज़र नहीं आता। लगता है जैसे चारों तरफ़ लक्ष्मी ही लक्ष्मी खड़ी है, एक हाथ में पानी और दूसरे में चाय का कप लिये। पता नहीं क्यों अब पानी और चाय में मज़ा नहीं आता।

कितनी नर्वस थी वो कि अकेली बाहर कैसे जायेगी। उसके लिए बहुत बड़ी चुनौती थी क्योंकि वो कई साल पहले ही स्कूल छोड़ चुकी थी। तब से उसने अपने आपको घर में ही क़ैद कर लिया था। अब दोबारा से वो दुनिया की भागदौड़ में क़दम रख रही थी। एक ऐसी भागदौड़ जहाँ लोगों की नज़रें आपको कब घायल करके निकल जाएँ पता ही नहीं चलता।

पर अब जब ठान ही लिया था कि कोर्स करना है तो बाहर भी निकलना ही था। अब उसने आना-जाना शुरू किया, पर वो सड़क पर चलते हुए डरती थी। लड़कों के कमेन्ट्स सुनती तो कलेजा मुँह को आ जाता। उसे लोगों से मिलने-जुलने की आदत तो थी नहीं और क्लास में बहुत सारी लड़कियाँ थीं, जो उससे बातें करती थीं। वो इस बात से भी परेशान थी। अपनी क्लास की लड़कियों की बातें मुझे बताती। वहाँ उसकी बहुत जल्दी एक दोस्त बनी जिसका नाम था शालू। शालू, जिसका किसी से नया-नया इश्क़ हुआ था। वो अपनी दास्तान-ए-इश्क़ किसी को सुनाना चाहती थी। वो भी ऐसे इंसान को जो तसल्ली से सुने और किसी से कहे नहीं। ऐसा भोलापन उसे लक्ष्मी में नज़र आया। एक ऐसी लड़की जिसे चुटिया में बल देने का सलीक़ा भी नहीं था। जो सिर्फ़ ख़ामोश होकर सबकी बात सुना करती थी। लक्ष्मी में एक आदत थी, वो सारी बातें मुझे बताती और कई-कई घंटे मेरे कान खाया करती। कभी-कभी तो मैं झुंझलाकर कहती, "मेरा दिमाग़ मत चाट!" वो झट से कहती, "अच्छा और जो तू अपनी बातें सुना-सुनाकर मेरा दिमाग़ चाटा करती थी, उस वक़्त मैं कैसे झेलती थी तुझे!" उसकी इस बात का मेरे पास कोई जवाब नहीं होता। वो फिर शुरू हो जाती, "पता है हमारी क्लास की लड़कियाँ कितना बोलती हैं!" पर वो ये नहीं सोचती थी कि सबके कच्चे चिट्ठे सुनाने में वो ख़ुद कितना बोलती है।

धीरे-धीरे उसका व्यक्तित्व भी बदलने लगा। अब एक हलचल सी थी मोहल्ले में। एक शांत सी लड़की अब दुनिया के रंगों में रंगने लगी थी। सभी उसे देख-देखकर हैरत भरते और बातें बनाते, "अरे! देखा तुमने कैसे स्टाइल में निकलती है। उसका कपड़े पहनने का तरीक़ा देखा। काली पैंट पर एक से एक शॉर्ट कुर्ता पहनती है। चप्पल देखी! ब्राउन रंग की, उसकी कितनी हील है। बालों में कैसे रंग करती है। पहले तो उंगुली में छल्ला तक नहीं पहनती थी अब तो ड्रेस की मैचिंग की चूड़ियाँ और ईयर रिंग डालती है। भैया बड़े दिमाग़ हो रहे हैं आसमान में इस लड़की के!" लोग बातें बनाते पर हम जानते थे कि वो कितनी भोली और सीधी है।

ऐसे ही लोगों की ज़बानें, और लक्ष्मी का दिमाग़ चलते न जाने छः महीने कहाँ छूमंतर हो गए। अब उसका कोर्स पूरा हो चुका था। लेकिन वो अपने हुनर को घर में बैठकर धुंधलाना नहीं चाहती थी। इसलिए उसने सीताराम बाज़ार में एक पार्लर ज्वाइन कर लिया। अब वो सुबह 10 बजे निकलती और शाम को घर लौटती। उसका एक रुटीन सा बन गया था और उस रुटीन में शामिल था उसका तैयार होना। अब उसे अपने आपको सँवारने में आलस सा आने लगा था। जब वो सुबह जाने के लिए तैयार होती तो काफ़ी देर आइने के सामने अपना सिर पकड़कर बैठी रहती। इस बात से मुझे बड़ी हैरत होती। जिस लड़की को सजना-सँवरना बहुत अच्छा लगने लगा था अब वो इस मेकअप से बोर होने लगी थी। उसे इस तरह बैठा देख मैं कहती, "जब मन नहीं करता तो क्यों तैयार होती है। ऐसे ही चली जाया कर।" वो आँखों में लाइनर लगाते हुए कहती, "ऐसे नहीं जा सकती।" "क्यों?" होठों पर लिप-लाइनर लगाते हुए कहती, "पागल, हम औरतों का हुलिया बदलते हैं। उन्हें ख़ूबसूरत बनाते है।

अगर हमारा ही हुलिया बिगड़ा होगा तो वो ये नहीं सोचेंगी की खुद तो बिगड़ी मशीन है, हमें क्या खूबसूरत बनाएगी।" अपनी जगह उसकी बात भी ठीक थी। पर इस बात से मुझे बड़ा अचम्भा होता। जो लड़की शुरू में इन सब चीज़ों को अपने शौक़ में लिया करती थी अब वो सजने-सँवरने को काम के द्वारा देखने लगी थी। मैंने बहुत क़रीब से देखा था, शौक़ को काम में बदलते हुए।

अब उसके बोलने का तरीक़ा भी बदलने लगा था। पहले वो सबसे नमस्ते कहती थी। पर अब बड़ा ही मुस्कुराकर 'हेलो' बोलती और पर्स तो ऐसे ऐक्शन से तख़्त पर फेंकती कि मेरी आँखें खुली की खुली रह जातीं। पहले जिस लड़की के मुँह में ज़बान नहीं थी अब ढेरों तरंगें निकलती थीं। इतने कम समय में बदलाव कहाँ से आया ये मैं समझ नहीं पा रही थी। मुझसे चाय बनाने के लिए तो ऐसे बोलती जैसे मैं उसकी चाय बनाने के लिए ही बैठी हूँ। पर मुझे बुरा नहीं लगता। चाहे ये सर्विस एक्सचेंज हो गई थी पर हम साथ बैठकर चाय तो पी सकते थे। मुझे इतना ही चाहिए था। मेरे चाय के प्याले के दो मिनट मुझे वापस मिल गए थे।

दिल्ली गेट

यशोदा

दिल्ली गेट, दिल्ली की जानी-मानी जगहों में से एक है। यहाँ ट्रैफ़िक और लोगों की धूम रहती है। यहाँ पर दो सड़कों को जुदा करता हुआ ये कबूतरख़ाना बना हुआ है। इसने अपनी पहचान उन लोगों के ज़रिये बनाई है जो व्यस्त ज़िन्दगी में फँसे हुए भी कुछ नेकी कमाना चाहते हैं। आज जब मैं इधर से गुज़री तो मुझे एक अनोखा ही रिश्ता नज़र आया यहाँ से जुड़े लोगों का, जो मैंने पहले नहीं देखा था। मैं घर से नहाकर निकली थी। इसलिए हल्की-हल्की ठंड महसूस हो रही थी। और यहाँ पर धूप बहुत अच्छी लग रही थी। ठंड के मद्देनज़र मैं यहाँ पर बनी चौड़ी मुंडेरी, जो दीवारनुमा थी, उस पर जा बैठी।

इतना शोर होने के बावजूद इस जगह पर एक अनजाना-सा सुकून मेरे अन्दर उतर रहा था। मैं ख़ामोशी से नज़रें घुमाकर इस जगह का मुआयना कर रही थी। मुझे अपने सामने इमरजेन्सी नज़र आ रही थी, जहाँ पर बहुत सारे फलों की रेहड़ियाँ लगी हुई थीं। मरीज़ों की आवाजाही में तंदुरुस्त लोगों का टोला भी इधर से उधर गुज़र रहा था। मेरे पीछे बड़ी-बड़ी कंपनियों की बिल्डिंग हैं, जहाँ पर धूप सीधी पड़ने की वजह से उनके नाम साफ़ नज़र आ रहे थे। इन सड़कों पर से गुज़रते हुए लोगों का रेला कभी ख़त्म नहीं होता। मुझे इधर से उधर गुज़रती हुई भीड़ को देखकर एक साथी याद आने लगा, जिसने कभी सवाल किया था, "अगर हम भीड़ में खड़े हो जाएँ, तो उस भीड़ की नज़रें हम से क्या कहेंगी? हटो, रास्ता छोड़ो?"

ये सवाल मेरे दिमाग़ में बार-बार हथौड़े मारने लगा। मैं सवालों के दबाव में आकर अपने सामने वाली सड़क पर चल रहे लोगों को ध्यान से देखने लगी। उनमें मुझे एक औरत नज़र आई, जिसका चेहरा काफ़ी पक्का और साँवला था। वो सड़क पार करके मेरी तरफ़ ही आ रही थी, और उसके सामने से चार-पाँच आदमी गुज़र रहे थे। मैं सिर्फ़ उस औरत का ही चेहरा देख पा रही थी। मेरी नज़र उन आदमियों पर नहीं, उस औरत की ही नज़रों पर जमी हुई थी, कि वो इन लोगों के बीच से निकलते समय कैसे रिऐक्ट करती है। लेकिन सिर्फ़ उसकी आँखें ही रिऐक्ट नहीं कर रहीं थीं, बल्कि उसके चेहरे के भाव भी बदलने लगे थे। जो चेहरा काफ़ी नॉर्मल नज़र आ रहा था, अब हल्की-सी तमतमाहट में था। उसके हाथ भी अपने दुपट्टे को सही करते हुए अपने ही जिस्म पर खेल रहे थे। उसकी आँखें उन लोगों की, और मेरी, उसकी तरफ़ उठी हुईं थीं। उसकी आँखों में जल्दी-से निकलने की तेज़ी नज़र आ रही थी। वो एक सेकण्ड में उन लोगों के बीच से निकल गई। लेकिन उस एक सेकण्ड में उसके चेहरे ने न जाने कितनी ही क्रियाएँ कर डाली थीं। वो मेरे पास से चलती हुई निकल गई। लेकिन मुझे ये पता नहीं चला कि उन लोगों की नज़रें उससे क्या कह रही होंगीं? मुझे अभी तक सवाल का जवाब नहीं मिला था।

मुझे अपने दिमाग़ में थकान महसूस होने लगी थी, और मैं सामने दाना खाते हुए कबूतरों को देखने लगी। मैंने फ़ैसला कर लिया कि मैं अब इस सवाल को मुड़कर नहीं देखूँगी। मैं कबूतरों को बड़े ही प्यार से देख रही

थी। और एक बुज़ुर्ग आदमी को भी, जिसका क़द छोटा था। वो कुर्ता-पजामा पहने हुए था, पैरों में प्लास्टिक के जूते थे जो काफ़ी घिस चुके थे, बाल पके हुए, रंग धूप में जला हुआ लग रहा था। नाक-नक़्शा ठीक ही था। वो आदमी कबूतरों के पीने के लिए मिट्टी के कुण्डों में पानी भर रहा था। वो कुण्डे आधे पानी से भरे हुए थे। आधे ख़ाली होने की वजह से वो ऊपर की तरफ़ को सूख रहे थे। जब वो आदमी कुण्डों में पानी डालता, तो मिट्टी की सोंधी-सोंधी ख़ुशबू मेरे अन्दर से होकर गुज़र जाती। ये बहुत ही ख़ूबसूरत मंज़र था, और इस मंज़र के चारों तरफ़ मुलायम अहसासों का जाल बिछा हुआ था। इन अहसासों में किसी के लिए कोई जगह नहीं थी — न दोस्तों के लिए, न अपनों के लिए, न परायों के लिए, और न ही अतीत के लिए। आज मैंने इतने सालों में पहली बार कुछ लम्हों के लिए अतीत से निजात पाई थी। मुझे नहीं पता कि ये कौन-सा सुकून था जो मेरे अन्दर से रोशनी की तरह निकलता हुआ बाहर तक फैल रहा था। मेरी इन कबूतरों और इस आदमी से नज़र नहीं हट रही थी। वो आदमी बार-बार कबूतरों के बीच में जाकर कुण्डों में पानी डालता और दानों को झाड़ू से एक तरफ़ इकट्ठा करने लगता। वो कबूतरों के बिलकुल नज़दीक था, लेकिन कबूतर उससे डर नहीं रहे थे। क्योंकि कबूतरों और उस आदमी के बीच दोनों की ही समझ बह रही थी, जिससे जुड़ाव का लॉक लगा हुआ था।

वो आदमी अपना काम ख़त्म करके बाजरे वाले के पास जाकर बैठ गया। मैं भी चलने के लिए उठने लगी। तभी मुझे एक कबूतर नज़र आया जो दाने के लिए दूसरे कबूतर को चोंच मार रहा था। उसके पास काफ़ी दाना बिखरा हुआ था, तब भी वो दूसरे कबूतर की चोंच में से दाना खींचने की कोशिश कर रहा था। ये देखते ही मेरी दृष्टि उन कबूतरों पर और गहरी हो गई और दिमाग़ में कई शब्द घूमने लगे। इसी बीच पीछे से "पीं-पीं" स्कूटर की तेज़ आवाज़ ने मेरा दृष्टिकोण तोड़ दिया। मैंने अपनी गर्दन पीछे घुमाई तो देखा मेरे पीछे एक कम-उम्र का लड़का था। उस ने काली पैन्ट और पैरेट कलर की टी-शर्ट पहनी थी, रंग साफ़ था और आँखें डार्क ब्राउन थीं। वो मेरी तरफ़ ही देख रहा था। मैंने एक फीकी-सी नज़र उस पर डालते हुए अपनी गर्दन घुमा ली और घड़ी में टाइम देखने लगी। अभी साढ़े ग्यारह ही बजे थे। तभी मेरे पीछे से फिर "पीं-पीं" की आवाज़ आने लगी। बालों पर हाथ फेरते हुए मैंने दोबारा मुड़कर देखा तो वही लड़का दूर खड़ा मुझे ही देख रहा था। मैंने उसे ग़ौर से देखा। मेरी आँखों में गुस्सा था, लेकिन उसकी आँखों से शरारत झलक रही थी। दो मिनट वो मुझे देखता रहा, फिर मुस्कुराता हुआ आगे निकल गया। मैं गर्दन घुमाकर अपने नाख़ूनों को देखने लगी और सोचने लगी, "मेरे साथ ऐसे कितने ही हादसे हो जाते हैं जो काफ़ी समय तक याद रह जाते हैं। फिर मैं अपने दिमाग़ के ढाँचे में झाँकने की बजाय इधर-उधर से दाना चुगने की क्यों कोशिश कर रही हूँ? जब मैं बाज़ार की भीड़, बस की भीड़ और रास्ते की भीड़ से गुज़रती हूँ, तो कितनी ही नज़रें मेरी नज़रों से टकराती हैं। भीड़ की उन नज़रों में कहीं तो हवस नज़र आती है, कहीं जल्दी से निकलने की मजबूरी, कहीं शर्मीलापन, कहीं परेशानी की लकीरें, तो कहीं सिर्फ़ ख़ालीपन, जिससे लगता है उन्हें अपने साथ-साथ किसी में कोई दिलचस्पी नहीं।

भीड़ की नज़रें हमसें सिर्फ़ यही नहीं कहतीं कि हटो, "रास्ता छोड़ो"। क्योंकि उसमें एक सोच के इंसान नहीं चलते। उसमें अलग-अलग कैटेगरी के लोग होते हैं। जिस तरह हमेशा मेरी नज़रों में सिर्फ़ जल्दी से निकलने की मजबूरी नहीं होती, उसी तरह उस भीड़ में हमेशा गुंडे, भाई और दोस्त ही नज़र नहीं आते। ये तो अपने-अपने मूड पर डिपेंड करता है, क्योंकि हमारे मूड की वजह से ही हमारी आँखों में बदलाव आता है।

ये तो हुई भीड़ की नज़रें, जो हमसे अनजानी हैं और अपने मूड पर डिपेंड करती हैं। लेकिन उन नज़रों का क्या किया जाए जिन्हें हम जानते हैं, जो हमारे लिए अनजानी नहीं हैं। कभी-कभी वो नज़रें हमें कुछ और ही अहसास करा जाती हैं। तब लगता है, जिन नज़रों को हम जानते हैं, वो तो ये नहीं हैं। फिर ये कौन-सी नज़रें हैं जिनसे हम अनजान हैं? ये नज़रों का बदलाव ठीक-ठाक चलती ज़िन्दगी में घुटन पैदा करता है। वो घुटन, जिसे अगर हम किसी को बताना भी चाहें, तो शायद न बता पाएँ। आख़िर बताएँ भी तो क्या बताएँ? जिसे हम ख़ुद नहीं समझ सकते, वो किसी को क्या समझाएँ? क्योंकि नज़रों की अदालत में गवाह नहीं हुआ करते।

कंप्यूटर
रुकावट
रिश्ते
मस्ती
आवाज़
मज़ा
ज़रिया
अकेलापन
बनावट
नुक्सान